चैतन्य लहरी

मार्च-अप्रैल २०१

हिन्दी

आपसे इतना कहना है कि यह ज़िन्दगी आपकी अपनी चीज़ है और आपको इसका पूरा उपयोग करना चाहिए, क्योंकि यह जिन्दगी बहुत महत्वपूर्ण है। आज तक परमात्मा ने अनेक लोगों को संसार में भेजा है, उस कार्य की ही फलश्रुति हो रही है। आज उसी कार्य के आशीर्वाद स्वरूप आप लोगों ने 'सहजयोग' पाया है।

प.पू.श्रीमाताजी, मुंबई, २.४.१९८५

इस अंक में

बिना एकता के हम लोग जीवित नहीं रह सकते ...४

जाति अर्थात मानव की प्रवृत्ति ...१३

शिव तत्व बुद्धि से परे है ...१४

अबोधिता का आनन्द उठाना चाहिए ...१६

प्रेम के सिवाय शिव कुछ भी नहीं...१८

आत्मसाक्षात्कार पाना अति आवश्यक है ...१९

वाणी की विविध अवस्थायें ...२०

निर्मला ...२४

सामूहिक चेतना के विषय में बहुत समय पूर्व बताया गया था। परन्तु सब अस्पष्ट था। सामूहिक चेतना में कुण्डलिनी, जो कि आपकी अपनी शक्ति है, उठती है और परिणामस्वरूप आप विराट के (पूर्ण के) अंग-प्रत्यंग बन जाते हैं तथा अन्य लोगों के विषय में भी आप में चेतना आ जाती है। इसे हम सामूहिक चेतना कहते हैं।

बिना एकता के
हम लोग जीवित नहीं रह सकते।

जहाँ तक प्रयत्नों का सम्बन्ध है, लोगों ने बहुत सी खोज की है, बहुत सी सभाएं की गईं और उन्होंने सबको विश्वस्त करने की कोशिश की कि बिना एकता के हम लोग जीवित नहीं रह सकते। कारण यह है कि यह विश्व एक है और हम सब इसके अंग-प्रत्यंग हैं। परन्तु हम में शरीर के भिन्न अवयवों की तरह एकरुपता नहीं है। शरीर में यदि कहीं काँटा चुभे तो पूरे शरीर को इसका पता चल जाता है। ऐसा हमारी जागृतिहीनता के कारण है। हमारी चेतना इतनी विकसित नहीं है कि हम अपने अन्दर इसे सामूहिक रुप से महसूस कर सकें। सामूहिक चेतना के विषय में बहुत समय पूर्व बताया गया था। परन्तु सब अस्पष्ट था। सामूहिक चेतना में कुण्डलिनी, जो कि आपकी अपनी शक्ति है, उठती है और परिणामस्वरूप आप विराट के (पूर्ण के) अंग-प्रत्यंग बन जाते हैं तथा अन्य लोगों के विषय में भी आप में चेतना आ जाती है। इसे हम सामूहिक चेतना कहते हैं। इसे अच्छी तरह से समझने के लिए परमात्मा की सर्वव्यापी शक्ति से एकाकारिता का अनुभव होना आवश्यक है। इसके विषय में हमने बाइबल, कुरान, हमारे सभी भारतीय धर्मग्रन्थों में सुना है। वर्णन किया गया है कि एक अति सूक्ष्म शक्ति है जो हमारे लिए सारा कार्य करती है। जब मैं इसके विषय में बताती हूँ तो थोड़े से लोग इस पर विश्वास करते हैं क्योंकि वे सोचते हैं कि ये हमारी बुद्धि से परे है। परन्तु आपको अपने मन से ऊपर जाना होगा।

नई दिल्ली,
६.४.१९९७

हमारा मन जिसे हम बहुत बहुमूल्य समझते हैं, अहम् तथा बन्धनों द्वारा बनाया गया है। मन मिथ्या है क्योंकि इसकी सृष्टि हमने स्वयं की है और हम स्वयं ही अपने

मन के हाथों का खिलौना बन जाते हैं। जैसे हम कम्प्यूटर का उपयोग करते हैं। कम्प्यूटर हमारे द्वारा बनाया गया है परन्तु यह हम पर शासन कर रहा है। इसी प्रकार यह मन हम पर शासन करता है और इसी मिथ्या मन से हम मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं। मैं यदि कहूँ (आपको सदमा नहीं पहुँचना चाहिए क्योंकि आपकी मन से एकरुपता है) कि यदि यह पटरी से उतर जाए तो कोई भी पागल हो सकता है। किसी भी व्यक्ति या व्यर्थ की चीज़ को यह अत्यन्त उपयोगी मान सकता है। अत: मन मानव को युद्ध के गर्त में धकेल सकता है जिससे हमारे हृदयों में एकता समाप्त हो जाएगी। उदाहरणार्थ मैं किसी ऐसे व्यक्ति से बात कर रही थी जिसे अलग राज्य चाहिए था। मैंने कहा, 'आपको अलग राज्य क्यों चाहिए?' उसने कहा, 'तब हम दो प्रधानमंत्री बना सकेंगे।' मैंने कहा, 'क्यों?' क्योंकि वह स्वयं प्रधानमंत्री बनना चाहता था।

मन मानव को युद्ध के गर्त में धकेल सकता है जिससे हमारे हृदयों में एकता समाप्त हो जाएगी

हमारा देश तीन और देशों में बँट चुका है, जैसे बर्मा, श्रीलंका, पाकिस्तान और बांग्लादेश भी भारत के ही भाग थे। अब यदि आप इन देशों में जाएं तो हैरान होंगे कि यहाँ दुर्दशा है। जो लोग इस कार्य के लिए लड़े, जिन्हें स्वाधीनता तथा भिन्न राज्य चाहिए था, उनमें से अधिकतर की हत्या कर दी गई। शेख मुजिबुर्र रहमान, भण्डारनायके, भुट्टो आदि। ये वे लेग थे जिन्हें पद चाहिए था और इस कारण उन्होंने यह कहना शुरु कर दिया कि हमें भिन्न राज्य चाहिएं, भिन्न पहचान चाहिए। किसको इससे लाभ हुआ? परन्तु अब भी वे इस बात को नहीं समझ पाए। पूर्ण से अलग हो कर उन्होंने कितने कष्ट उठाए हैं।

रुस में मैंने देखा है, अब बेला रुसे रुस में वापिस आने का प्रयत्न कर रहा है। मैंने यूक्रेन के लोगों से पूछा कि रुस से अलग क्यों हो रहे हैं? तो इस प्रकार के विचार कि हमें एक देश से अलग होकर दूसरा देश बना लेना चाहिए, इस प्रकार से मुझे कोई देश उन्नति करते नहीं नज़र आया।

आत्साक्षात्कार मिल जाने के पश्चात् आपके अन्दर एक नया आयाम विकसित हो जाता है। जिससे आप सामूहिक चेतना महसूस करते हैं। अपनी अंगुलियों के सिरों पर आप जान सकते हैं कि आप में क्या दोष हैं और अन्य लोगों में क्या दोष हैं। एक बार यदि ऐसा हो जाए तो तेज़ी से एकता आती है। मैं स्वयं आश्चर्यचकित हूँ कि सहजयोग में किस प्रकार घटनायें घटित हो रही हैं।

मैं रुस गई तो मुझे प्रवचन देने में संकोच हो रहा था। परन्तु जब मैं पहला प्रवचन देने के लिए गयी तो दंग रह गयी। दो हजार लोग सभागार के अन्दर बैठे थे और दो हजार बाहर। मैं समझ न पायी कि रुस के लोगों ने इतनी आसानी से मुझे कैसे समझ लिया!

बुद्धिजीवी लोगों के मस्तिष्क सदा उनके विचारों तथा योजनाओं पर होते हैं।

बाहर बैठे लोगों ने कहा कि हमारा क्या होगा? हमारे लिए अन्दर बैठने के लिए जगह नहीं है। मैंने कहा, कोई बात नहीं, मैं वापिस आऊंगी। अन्दर जा कर मैंने सब लोगों को साक्षात्कार दिया। जब मैं बाहर आयी तब भी लोग बाहर बैठे हुए थे। उन्होंने पूछा कि, 'हमारा क्या होगा?' मैंने कहा, 'ठीक है, मैं कल सुबह आऊंगी।' रुस में बहुत से सुन्दर बाग हैं। मैंने उनसे कहा कि, 'आप लोग आइये, मैं सीढ़ियों पर बैठ कर आपसे बात करुंगी।' आप जानकर हैरान होंगे कि छः हजार लोग आये। मैंने पूछा, 'आप लोगों का मेरी तरफ इतना झुकाव कैसे हो गया है? मैंने आप लोगों के लिए क्या किया है? आप कैसे सोचते हैं कि मैं आपको कुछ विशेष दे सकती हूँ?' उन्होंने कहा यह स्पष्ट है। उनकी निश्चलता को देखकर मैं हैरान थी! मैंने देखा है कि रुस तथा पूर्वी ब्लाक के लोग अत्यन्त निश्चल हैं। इस संवेदना का सम्भवतः एक कारण यह भी है कि उनका शोषण हुआ है। जो भी हो उनके बन्धन समाप्त हो गए हैं। उनमें अधिकार भाव नहीं है। सरकार ने उन्हें कहा कि अपने फ्लैट ले कर खुशी से वहाँ रहो, पर उन्होंने कहा कि नहीं हमें फ्लैट नहीं चाहिए। उनमें स्वामित्व भाव बिल्कुल नहीं है। वे बिल्कुल शुद्ध हैं, बन्धन रहित क्योंकि उन्हें धर्म, परमात्मा या ऐसी अन्य चीज़ों के विषय में नहीं बताया गया जो हमारे देश में समस्यायें खड़ी कर रही हैं। मैं हैरान थी कि इन लोगों ने सहजयोग को आसानी से अपना लिया। अगले कार्यक्रम में दस हजार लोग आये।

मैं रुसी भाषा नहीं जानती। उनका व्यवहार कितना अच्छा था कि दो सौ पचास वैज्ञानिकों के लिए हमने एक कार्यक्रम किया। रुस में विज्ञान को अत्यन्त सूक्ष्म रुप से विकसित किया है। मैंने जब उन्हें विज्ञान के विषय में बताना शुरु किया तो उनमें से एक ने उठकर कहा कि, 'माँ, विज्ञान तो काफी हो चुका, कृपा करके आप हमें दैवी विज्ञान के विषय में बतायें।' वे लोग वास्तव में अन्तर्दर्शी हैं। मैंने उनसे पूछा कि, 'क्या वे मास्को में हुए सैनिक विद्रोह के कारण चिन्तित हैं?' उन्होंने उत्तर दिया कि, 'हम क्यों चिन्ता करें। हम तो परमात्मा के साम्राज्य में हैं।'

बुद्धिजीवी लोगों के मस्तिष्क सदा उनके विचारों तथा योजनाओं पर होते हैं। कोई एक विशेष प्रकार के व्यक्ति से मिलता है और आक्रामक बन जाता है। दूसरा किसी और प्रकार के

व्यक्ति से मिलता है और उससे एकरुप हो जाता है। आप जा कर किसी का भाषण सुनते हैं और वह भाषण आपके मस्तिष्क में बैठ जाता है। और इस प्रकार आपका चित्त हर समय बाह्य चीज़ों से ढका रहता है। जब तक ये आपके अपने अनुभव नहीं होते ये अस्पष्ट होते हैं। वह अनुभव प्राप्त करना बहुत आसान काम है। नि:सन्देह हमारा देश महान लोगों का देश है। जब मैं चीन गयी तो उन्होंने मुझसे पूछा, 'श्रीमाताजी, क्या ये हमारी चीन की संस्कृति का खजाना है?' भारत अध्यात्म का खजाना है। उन्होंने इसके विषय में पढ़ा है, इसके विषय में जानते हैं और हमसे कुछ प्राप्त करने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। परन्तु यहाँ तो मुझे विशेष दिखाई नहीं देता। यहाँ पर तो हमारे पास स्वयं पर चित्त देने के लिए और स्वयं को जानने के लिए समय ही नहीं है। ईसा ने और मोहम्मद साहब ने कहा है कि जब तक आप स्वयं को नहीं पहचान लेते आप परमात्मा को नहीं जान सकते। आप स्वयं को जानें। आत्मज्ञान होना चाहिए और यह आत्मज्ञान आपको मन तथा विज्ञान से ऊपर ले जाएगा।

आत्मज्ञान आपको मन तथा विज्ञान से ऊपर ले जाएगा।

आप जानते हैं कि विज्ञान की अपनी सीमाएं हैं। सर्वप्रथम तो यह अनैतिक है। इसमें नैतिकता नहीं है इसलिए विज्ञान के साथ आप आगे नहीं बढ़ सकते। आप लोगों को मार सकते हैं, देशों को नष्ट कर सकते हैं और क्योंकि यह अनैतिक है। आपको कुछ महसूस नहीं होता। अब नैतिकता का अर्थ बाह्य रोक-टोक नहीं, इसका अर्थ है करुणा, प्रेम, शुद्ध प्रेम। आप समझ जाते हैं कि क्या करना चाहिए! परन्तु यदि आप बनावटी रुप से नैतिक बनने का प्रयत्न करते हैं तो ऐसे लोग अत्यन्त रुखे और क्रोधी हो जाते हैं। अन्दर से ये बात उठनी चाहिए कि आप शुद्ध आत्मा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं। आप मस्तिष्क के अहम् तथा भावनाओं से ऊपर हैं, आप शुद्ध आत्मा हैं। केवल जानना मात्र ही काफी नहीं, आपको बनना चाहिए, बनना ही विशेष बात है। यदि आप ऐसे बन जाते हैं तो आप ये जानकर आश्चर्यचकित रह जाएंगे कि आप कितने महान हैं। आप न केवल सामूहिक रुप से चेतन हो जाते हैं, आप प्रेम तथा करुणा के स्रोत भी बन जाते हैं। जब तक यह घटित नहीं हो जाता, आप एकता नहीं ला सकते। उदाहरणार्थ मैं सहजयोग में कार्य कर रही हूँ, जिसे मैं सरकारी स्तर नहीं कहूँगी। मैंने कभी अपने पति के कार्यालय को परेशान करने का प्रयत्न नहीं किया। अपने आप मैंने यह आरम्भ किया। सर्वप्रथम थोड़े हिप्पियों से शुरु किया और शनै: शनै: यह इतनी मधुर चीज़ बन गयी कि हम रुस और पूर्वी ब्लाक में भी प्रवेश कर सके। सभी यूरोप के देशों में, अमेरिका में तथा दक्षिण अमेरिका में गए। क्योंकि लोगों ने इसे महसूस किया था। दक्षिण अमेरिका का एक भी व्यक्ति इसे प्राप्त करता है तो वह कहता है कि, 'दक्षिण अमेरिका का क्या होगा? आप कब दक्षिण

अमेरिका आ रही हैं? हमें आपकी बहुत आवश्यकता है।' जब मैं वहाँ गयी तो पाया कि वहाँ बहुत से साधक थे, उनकी दिलचस्पी सत्ता, धन तथा अन्य चीज़ों में न थी।

अब मैं आपको एक मधुर कहानी सुना दूँ, वे दो बार अपनी मधुरता का प्रदर्शन कर चुके हैं। पहला जब मैं रुस गई तो पच्चीस जर्मन लोग मास्को आए। वे सहजयोगी थे। मैंने उनसे पूछा कि, 'वे कैसे यहाँ आए हैं?' तो कहने लगे कि, 'श्रीमाताजी क्या आप ऐसा नहीं सोचती कि हम जर्मनी के लोगों ने बहुत से रुसी लोगों की हत्या की है। क्या अब यह हमारा कर्तव्य नहीं कि हम आकर उन्हें वह दे सकें जो हमने प्राप्त किया है?' इतना प्रेम और करुणा! ये जर्मनी के लोग इतने कोमल और विनम्र हैं कि आप सोच भी नहीं सकते कि उनमें हिटलर जैसी कोई चीज़ है। आस्ट्रिया के लोग, वे भी जर्मन हैं, इज़राईल गए। मैंने कहा, 'आप इज़राईल क्यों गए? वहाँ तो आपके लिए कोई प्रबन्ध भी न था?' कहने लगे, 'श्रीमाताजी हमने अपने को इज़राईली यहूदियों के लिए बहुत जिम्मेदार पाया क्योंकि हमारे देश में बहुत से यहूदियों की हत्या हुई जिसके लिए हम स्वयं को क्षमा नहीं कर सकते। अत: इस विषय में कुछ तो करना है। जर्मन लोगों का इज़राईल वासियों से जान-पहचान करके, उनसे बातचीत करने की कल्पना कीजिए! उन्होंने कोई तीस युवा इज़राईलियों को पकड़ा।' मैंने इज़राईलियों से पूछा कि, 'आप यहाँ कैसे आए?' वे कहने लगे, 'क्यों नहीं, हम मुसलमानों से दोस्ती करना चाहते हैं और इसलिए हम यहाँ पर हैं।' मैंने कहा, 'बहुत अच्छा विचार है।' स्वत: ही वे एकता ला रहे हैं। मैं उन्हें नहीं कहती, अपनी सूझ-बूझ से वे यह कार्य कर रहे हैं। आन्तरिक सूझबूझ की आवश्यकता है, आन्तरिक एकता की, बाहरी दिखावे की नहीं। हम मानव यदि करुणा के सागर में उतर जाएं तो हममें बड़े-बड़े कार्य करने की क्षमता है और हम लोग यह इतने प्रेमपूर्वक करते हैं कि आप विश्वास ही नहीं कर सकेंगे कि ये मानव हैं। किस प्रकार यह मानव जीवन की सीमाओं से पूर्णत: ऊपर

उठ गए हैं!

उस दिन मैंने एक महानुभाव के बारे में समाचार पढ़ा जो कह रहा था कि मैं जिहाद छेड़ रहा हूँ। किसलिए? पश्चिम में व्याप्त चरित्रहीनता, मदिरापान तथा अन्य सभी बुराईयों से मुक्ति पाने के लिए। तो एक सहजयोगी ने मुझे टेलिफोन किया कि श्रीमाताजी इसके लिए एक जेहाद करने की आवश्यकता है? आप बस सहजयोग करें, आपको इन सभी चीज़ों से मुक्ति मिल जाएगी। आप सभी को शराब की लत थी, सभी प्रकार की मूर्खता एवं चरित्रहीनता के कार्य हम किया करते थे परन्तु इसके लिए आपको जेहाद करने की आवश्यकता नहीं। इससे आपको स्वत: ही मुक्ति मिल जाती है। आप अत्यन्त शुद्ध होकर इन सब चीज़ों से ऊपर उठ जाते हैं। आपको उपाधि मिल जाएगी। मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि आपके साथ ही यह घटित हो सकता है, यह कोई विशेष बात नहीं है। क्योंकि जब यह कुण्डलिनी उठती है तो यह कार्यान्वित करती है। वह आपकी अपनी माँ है। आपके विषय में वह सभी कुछ जानती है और जिस प्रकार वह आपको पुनर्जन्म देती है वह बहुत ही सुखद अनुभव है। आप सब, विशेषकर भारतीय लोगों में यह प्राप्त करने की योग्यता है। यहाँ बहुत से सूफी हैं। कमलों की तरह से वे खिल उठे हैं। हमें समझना चाहिए कि अपने पूर्व जन्मों के पुण्यकर्मों के कारण ही हम इस योग भूमि पर अवतरित हुए हैं। परन्तु समस्या यह है कि हम इस योग भूमि का लाभ नहीं उठा रहे हैं। ऐसा करना आपके हाथ में है। यह योग भूमि आपको परमात्मा के सभी आशीर्वाद दे सकती है। हमने इसका प्रयत्न किया है और इस परिणाम पर पहुँचे हैं।

अपने पूर्व जन्मों के पुण्यकर्मों के कारण ही हम इस योग भूमि पर अवतरित हुए हैं।

अवस्था विज्ञान भी है। सहजयोग के माध्यम से मैं आपको बहुत सी चीज़ें बता सकती हूँ कि आपमें आत्माएं हैं तथा और भी बहुत सी चीज़ें हैं जिनका अब तक वर्णन नहीं किया जा सका है। उदाहरणार्थ मूलाधार नामक प्रथम चक्र कार्बन के अणुओं से बना हुआ है। कार्बन के अणुओं को जब आप देखेंगे तो हैरान हो जाएंगे कि बायीं ओर से देखने पर ॐ (ओंकार) सम दिखाई देते हैं। परन्तु इसी को जब आप नीचे से ऊपर देखते हैं तो ये अल्फा तथा ओमेगा (आदि-अंत) सम प्रतीत होते हैं। ईसा ने कहा है, 'मैं ही आदि (अल्फा) हूँ, मैं ही अन्तर (ओमेगा) हूँ' और वे श्री गणेश का अवतार थे। इस बात को प्रमाणित किया जा सकता है। एक अन्य चीज़ जो है वह यह है कि एक बार जब आपको आत्मसाक्षात्कार प्राप्त हो जाता है तो आप अपने हाथों से शीतल लहरियाँ अनुभव करने लगते हैं और परमात्मा की सर्वव्यापक शक्ति को अपने चहुँ ओर महसूस करते हैं। इससे आप जान जाते हैं कि आपका कौनसा चक्र पकड़ा हुआ है। दायें और बायें दोनों हातों पर सात-सात चक्र हैं। अपनी अंगुलियों के सिरों पर आप आसानी से भिन्न

कुछ बीज़ों को यहाँ से स्थानान्तरित करके भेज दिया गया हो और वहाँ अंकुरित होकर सहजयोग वृक्ष लहलहा उठा हो।

चक्रों को महसूस कर सकते हैं। एक छोटा सा बच्चा भी इन्हें महसूस कर सकता है। कोई भी साक्षात्कारी आपको बता सकता है कि आपमें क्या परेशानी है या उनके अपने अन्दर क्या दोष हैं। दस साक्षात्कारी बच्चों की आँखों पर यदि पट्टी बाँधकर आप बिठा दें और कोई व्यक्ति उनके सम्मुख खड़ा करके उनसे पूछें कि इसका कौनसा चक्र पकड़ रहा है तो वे सभी एक ही अंगुली उठाएंगे, क्योंकि यह पूर्ण ज्ञान है। यदि वे तर्जनी उठाते हैं तो इसका अर्थ ये हुआ कि उसके गले में कोई खराबी है। वह व्यक्ति आपको पूछेगा कि 'मैंने तो आपको नहीं बताया आप कैसे जान गए?' मैंने कहा कि, 'यह इस शक्ति, इस ज्ञान द्वारा बताया गया है।'

इस देश में हम बहुत से लोग झूठ मूठ के गुरुओं के कारण कष्ट उठा रहे हैं। यह लोग वैभवशाली लोगों को पकड़ते हैं और बहुत धन लूट रहे हैं। किसी भी शहर में जाकर यह धनी लोग खोज लेते हैं। ऐसे लोगों को आप अपनी अंगुलियों के सिरों पर पहचान सकते हैं। कुरान में कहा गया है कि कयामा के समय आपके हाथ बोलेंगे आरै आपको अपने तथा अन्य लोगों के विषय में बताएंगे। आप यदि इन चक्रों को ठीक करना सीख लें तो अपने तथा अन्य लोगों के चक्रों को भी ठीक कर सकते हैं। यह सातों चक्र ही आपके शारीरिक, मानसिक तथा भावनात्मक तथा सर्वोपरि आपके आध्यात्मिक अस्तित्व के लिए जिम्मेदार हैं। तो आप ऐसा कर सकते हैं और यही वह व्यक्तित्व है जो पूर्ण मानव है। जिसमें कोई द्वंद नहीं है। वह अन्दर से पूर्णत: शान्त होगा और बाहर से अत्यन्त निर्मल तथा प्रेममय। वह सभी के हृदय जीत लेगा।

हमारे एक सहजयोगी थे जो पहले लन्दन में थे। फिर इटली चले गए। इटली जाकर मुझसे कहने लगे कि, 'श्रीमाताजी, मैं अत्यन्त हताश हूँ। यहाँ कोई अन्य सहजयोगी नहीं है। मुझे बहुत अकेलापन महसूस होता है।' तब हमने वहाँ एक कार्यक्रम किया और अब रोम में हजारों सहजयोगी बन गए हैं। इस प्रकार सहजयोग फैलना शुरु हुआ। मैंने इसे नहीं फैलाया है। जहाँ तहाँ जाकर सहजयोगियों ने यह कार्य किया। मानो कुछ बीज़ों को यहाँ से स्थानान्तरित करके भेज दिया गया हो और वहाँ अंकुरित होकर सहजयोग वृक्ष लहलहा उठा हो। हैरानी की बात है कि इन सहजयोगियों में अत्यन्त प्रेम है।

अब अफ्रीका में ४०० अत्यन्त दृढ़ सहजयोगी हैं। अभी तक मैं कभी अफ्रीका नहीं गई।

हैरानी की बात है कि अफ्रीका के एक शहर में ४०० सहजयोगी हैं। अब ये क्या कर रहे हैं-बस अधिकाधिक सहजयोगी बना रहे हैं। यही उनकी कार्यशैली है। वे कहते हैं कि यदि आपको मानसिक शान्ति चाहिए तो आत्मसाक्षात्कार एकमात्र उपाय है। यही माँ का 'प्रलोभन' है। माँ ने यदि औषधि भी देनी हो तो चॉकलेट में मिलाकर देती हैं। इसी प्रकार आप भी कह सकते हैं कि यदि वास्तव में आप मानसिक शान्ति चाहते हैं, एकता चाहते हैं तो यह कार्यान्वित हो सकती है। आरम्भ में ही मैंने आपको बताया था कि यह अति महान विद्या है और यदि वह विद्या आपके पास है तो सहजयोग बहुत ही तेज़ी से बढ़ेगा क्योंकि लोगों में स्वाभाविक, स्वत: और अन्तर्जात प्रेम उत्पन्न करने का यही एकमात्र मार्ग है। हर वर्ष, हर माह हमारे कार्यक्रम होते हैं। गणपतिपुले नामक दूरदराज़ एक स्थान पर हमारा कार्यक्रम होता है। गरीब, अमीर सभी प्रकार के लोग विश्व भर से वहाँ आते हैं। धनाभाव होने के कारण इन लोगों के लिए वहाँ हमारे पास अधिक प्रबंध भी नहीं होते। फिर भी लोग वहाँ आते हैं और जहाँ हो सकता है हम उन्हें ठहरा देते हैं और वे इसका आनन्द लेते हैं। मैंने उनसे पूछा कि, 'क्या यहाँ आपको कष्ट नहीं होता?' तो कहने लगे, 'श्रीमाताजी, हम तो केवल आत्मसुख खोज रहे हैं। यही सुखदायी होता है।' वहाँ ये लोग मुझे छोटी-छोटी सुविधाओं के लिए परेशान नहीं करते। सभी राष्ट्रों के लोग मिलकर आनन्द लेते हैं। इतनी शान्तिमय तारतम्यता, इतना सुन्दर आनन्द प्रवाह! नि:सन्देह कभी-कभी वे एक दूसरे की टाँगें भी खींचते हैं, परन्तु सदैव वे आनन्द और खुशी से परिपूर्ण होते हैं। विरोध और प्रतिस्पर्धा जैसी तुच्छ चीज़ें समाप्त हो जाती हैं। यह दोष उन्हें पसन्द नहीं है क्योंकि वे सन्त बन चुके हैं और लोग कहते हैं कि ये परमात्मा के बन्दे हैं तथा वे इस दिव्य प्रेम के उत्तराधिकारी बन जाते हैं। वे केवल इसके योग्य ही नहीं, ये उनका जन्मजात अधिकार है। उनकी संख्या आश्चर्यचकित रुप से बढ़ रही है। मेरी तो समझ में ही नहीं आता क्योंकि कभी तो केवल एक दो सूफी हुआ करते थे जो कष्ट झेलते रहते थे। सहजयोगी कभी तुर्की भाग रहे हैं, कभी ट्युनिशिया। ट्युनिशिया में तो मैं यह देखकर हैरान थी कि ज्यों ही लोगों ने आत्मसाक्षात्कार लिया उनकी छोटी-छोटी समस्यायें समाप्त हो गई। नि:सन्देह यह आपको रोगमुक्त करता है। इसमें कोई बड़ी बात नहीं। रोगमुक्त करके यह व्यक्ति को पूर्ण मानसिक शान्ति प्रदान करता है। आप अपने आप में तथा अन्य लोगों के प्रति शान्त होते हैं क्योंकि आपमें शान्ति भाव विकसित हो जाता है।

जाति

अर्थात मानव की प्रवृत्ति

हिन्दू धर्म में माना जाता था कि हर मनुष्य के हृदय में परमात्मा का प्रतिबिम्ब आत्मा के रूप में है। यदि ऐसा है तो किस प्रकार हम हिन्दू समाज को भिन्न जातियों में बाँट सकते हैं? भारतीय सभ्यता के आरम्भिक हजारों वर्षों में लोग मनुष्य के स्वभाव के अनुसार उसकी जाति मानते थे, 'जाति' अर्थात मानव की प्रवृत्ति। परमात्मा को प्राप्त करने की प्रवृत्ति वाले लोग 'ब्राह्मण' कहलाते थे। इन लोगों को पूर्णतः पावन तथा धन एवं सत्ता से विमुख होना पड़ता था। सत्ताकांक्षी लोगों को क्षत्रिय कहते थे। ये लोग अबोध, धार्मिक एवं दीन-दुखी लोगों की सुरक्षा के लिए जिम्मेदार हुआ करते थे। व्यापार तथा धनार्जन में जिन लोगों की रूचि होती थी वे वैश्य कहलाते थे। चौथी प्रकार के लोगों को शुद्र कहा जाता था अर्थात निम्न-चेतना के लोग जो तुच्छ सेवाओं द्वारा इन्ही लोगों की सेवा करके धनार्जन करते थे। ये जातियाँ जन्म से न होकर व्यक्ति की प्रवृत्ति के अनुसार हुआ करती थी

प.पू.श्रीमाताजी, २१.३.१९९८

शिव तत्व

बुद्धि से परे है

मानव का अन्तिम लक्ष्य यही है कि वो शिव तत्व को प्राप्त करे। शिव तत्व बुद्धि से परे है। उसको बुद्धि से नहीं जाना जा सकता। जब तक आप आत्मसाक्षात्कारी नहीं होते, जब तक आपने अपने आत्मा को पहचाना नहीं, अपने को जाना नहीं, आप शिव तत्व को जान नहीं सकते। शिवजी के नाम पर बहुत ज्यादा आडम्बर, अन्धता और अंधश्रद्धा फैली हुई है। किन्तु जो मनुष्य आत्मसाक्षात्कारी नहीं वो शिवजी को समझ ही नहीं सकता क्योंकि इनकी प्रकृति को समझने के लिए सबसे पहले मनुष्य को उस स्थिति में पहुंचना चाहिए जहाँ पर सारे ही महान तत्व अपने आप विराजें। उनके लिए कहा जाता है कि वे भोले शंकर हैं। आजकल बुद्धिवादी बहुत से निकल आए हैं संसार में, और अपनी बुद्धि की उड़ान से जो चाहे वो उटपटांग लिखा करते हैं और फिर कहते हैं ये शिवजी तो भोले हैं। इनका भोला होना बुद्धिवादियों के हिसाब से तो एकदम ही बेकार चीज़ है। आजकल आदमी जितना चालाक और चुस्त होगा वो यशस्वी हो जाता है। तो इनका भोलापन कैसे समझा जाए? आजकल के लोग सोचते हैं जो आदमी भोला होता है वो बिल्कुल बेवकूफ है। लेकिन शिवजी का भोलापन ऐसा है कि जहाँ वो सब कुछ है। समझ लीजिये कि जरूरत से ज्यादा कोई श्रीमंत रईस आदमी हो जाए और उसको विरक्ति आ जाए और उसका लोग धन उठा के ले जाए तो लोग कहेंगे अजीब भोला आदमी है जिसका लोग धन चुरा रहे हैं। उसपे कोई असर ही नहीं। लेकिन जब उसको विरक्ति आ गयी और उस धन का उसके लिये महात्म्य ही नहीं रहा, वो अपने भोलेपन में बैठा है और भोलेपन का मज़ा ले रहा है। जब चीज़ अपने आप हो ही रही है, सब कुछ कार्यान्वित ही है तो शिवजी का उसमें कार्य भाग क्या रहता है? वे भोलेपन से सब चीज़ देखते रहते हैं। वो साक्षी स्वरूप हो गये और शक्ति का कार्य देखते हैं। शक्ति ने सारी सृष्टि रचाई और शक्ति ने ही सारी देवी-देवता बनाये और उनके सारे कार्य बना दिए। उनकी नियुक्ति हो गई और अब शिवजी को क्या काम हैं? शिवजी को बस देखना है। और फिर देखने में ही सब कुछ आ जाता हैं। उनके भोलेपन का असर ये है कि जिसपे भी दृष्टि पड़ जाए वो तर जाता है। जिसके तरफ उनका चित्त चला जाए वो तर जाए। कुछ उनको करने कि जरूरत ही नहीं हैं। ये सब खेल हैं। जैसे बच्चों के लिए खेल होता है, परमात्मा के लिए वो सारा एक खेल है।

प.पू.श्रीमाताजी, मुंबई, १९.२.१९९३

अबोधिता

का आनन्द उठाना चाहिए

निष्कपटता शिव का एक गुण है। बाल सम वे अबोध हैं। वे साकार अबोधिता हैं। हमें अपने विषयों, सक्रियों को अबोधिता के सागर में डुबो देना है। अबोधिता को समझ कर, महत्व देकर इसका आनन्द उठाना चाहिए। पशु तथा बच्चे अबोध होते हैं। इन सब बातों पर चित्त दें। सड़क पर चलते हुए आपको क्या देखना चाहिए? आप अपनी दृष्टि पृथ्वी से केवल तीन फुट ऊँची रखें। इस ऊँचाई पर आपको फूल, हरी घास और बच्चे दिखाई पड़ेंगे। तीन फुट से ऊँचे लोगों को देखने की आवश्यकता ही नहीं। जो व्यक्ति अबोध नहीं उसकी टांगो तक आप चाहे देख लें लेकिन उसकी आँखों में न देखें। इस इच्छा को अबोधिता में लीन कर दें। मूलाधार अबोधिता तथा पवित्र धर्म परायणता है। यह श्री गणेश का गुण है। मनुष्य की भांति इस विश्व में रहते हुए, चाहे आप बालक न भी हो तो भी अभी तक आप अबोध हैं।

प.पू.श्रीमाताजी,
इटली, १७.२.१९९१

जैसे एक बार श्रीकृष्ण की सोलह-हज़ार और पाँच पत्नियों ने एक प्रसिद्ध महात्मा को मिलना चाहा। रास्ते में नदी में बाढ़ के कारण वे उसे पार नहीं कर पाई। वापिस आकर उन्होंने श्रीकृष्ण से नदी पार करने की विधि पूछी। तो श्रीकृष्ण ने उनसे कहा कि नदी से जाकर कहो कि, 'यदि श्रीकृष्ण योगेश्वर हैं और ब्रह्मचारी भी, तो पानी नीचे आ जाए।' नदी से इस प्रकार कहने पर नदी का पानी घट गया। अत: संसार में पति-पत्नी आदि की तरह रहते हुए भी आप अबोध हो सकते हैं। यही पवित्रता की निशानी है।

प्रेम के सिवाय शिव कुछ भी नहीं

आप एक सर्वव्यापक व्यक्ति बन जाते हैं और यही दृष्टिकोण प्राप्त करना है।

प्रेम के सिवाय शिव कुछ भी नहीं। प्रेम सुधारता है, पोषण करता है और आपके हित की कामना करता है। शिव आपके हितों का ध्यान रखते हैं। प्रेम से जब आप दूसरों के हितों का ध्यान रख रहे होते हैं तो जीवन का सारा ढांचा ही बदल जाता है। इतने लोगों से एकाकारिता हो जाने के कारण आप वास्तव में इसका आनन्द उठाते हैं। आप एक सर्वव्यापक व्यक्ति बन जाते हैं और यही दृष्टिकोण प्राप्त करना है।

जब मुझे पता लगता है कि निम्न जाति या रंग के कारण किसी से दुर्व्यवहार किया गया। मेरी समझ में नहीं आता कि यह कैसे सम्भव है क्योंकि हम सब एक ही शरीर के अंग-प्रत्यंग हैं। एक ही माँ से जन्में सब भाई-बहन हैं। परन्तु यह अनुभूति तभी सम्भव है जब आप अपने सम्बन्धों को इस महान, अथाह प्रेम-सागर में विसर्जित कर देते हैं। स्वयं देखिये कि क्या आप वास्तव में सबसे प्रेम करते हैं? मैं अपने लिए कभी कुछ नहीं खरीदती। दूसरों का आनन्द ही सभी कुछ है। यही सर्वाधिक-आनन्ददायी है। अपने बारे में सोचें, 'मैं यहाँ क्यों हूँ?' सभी का आनन्द लेने के लिये। ये सब साक्षात्कारी मनुष्य हैं। 'ये कितने सुन्दर कमल हैं। मैं भी कीचड़ में नहीं धसूंगा। मैं कमल हूँ।' हृदय कमल को खोलने का यही तरिका है। ऐसे व्यक्ति की सुगन्ध भी अति सुन्दर होती है। हम सब में एकाकारिता हो जाने के बाद कहीं भी यदि कोई कार्य होता है तो हम उसका आनन्द उठाते हैं। शिव रूपी प्रेम-सागर में अपनी छोटी-छोटी लिप्साओं को विसर्जित करना आवश्यक है।

प.पू.श्रीमाताजी, इटली, १७.२.१९९१

आत्मसाक्षात्कार पाना अति आवश्यक है

हमारा जीवन आत्मसाक्षात्कार के बाद एक दिव्य, एक भव्य, एक पवित्र जीवन बन जाता है इसलिये मनुष्य के लिये आत्मसाक्षात्कार पाना अति आवश्यक है। उसके बगैर उसमें सन्तुलन नहीं आ सकता। उसमें सच्ची सामूहिकता नहीं आ सकती। उसमें सच्चा प्रेम नहीं आ सकता। और सबसे अधिक उसमें सत्य जाना नहीं जा सकता। तो सारा ज्ञान, उसकी शुद्ध ज्ञानता आ जाती है। जिसे कि विद्या कहा जाता है, तो उसका देखना भी निरंजन हो जाता है। वो देखना मात्र होता है। कोई बीज को देखते वक्त उसमें कोई उसकी प्रतिक्रिया नहीं होती है। देखता है और देखने से ही पूरा ज्ञान हो जाता है उस चीज़ का। तो मनुष्य हमेशा जब आत्मसाक्षात्कार से प्लावित नहीं होता तो वो एक तरह से अपने ही बारे में सोचता है।

प.पू.श्रीमाताजी,
२३.२.१९९०

वाणी की विविध अवस्थायें

'परावाणी' का आरंभ यहीं से होता है (श्रीमाताजी अपनी नाभि पर हाथ रखकर इसकी व्याख्या करती हैं) यह नाद (sound) है जो कि मौन है।

तब यह हृदय पर आता है और 'अनहद' बन जाता है और 'पश्यन्ति' कहलाता है क्योंकि यह मात्र साक्षी रुप होता है। 'वाणी' वाणी की वह शक्ति, नाद की वह शक्ति साक्षी मात्र है और अनहद अवस्था है तब यह विशुद्धि स्तर पर आती है और 'मध्यमा' कहलाती है। अभी भी यह मध्यम अवस्था में है, गले तक है परन्तु जब यह मुँह तक आती है तब यह 'बैखरी' बन जाती है अर्थात तब यह बोलती है तो इस प्रकार से परावाणी का अर्थ ये है कि जब परमात्मा को कुछ कहना होता है तो वे परावाणी में कहते हैं जिसे आप सुन नहीं सकते। आप नहीं जानते कि परमात्मा क्या कह रहे हैं। आप इसे सुन नहीं सकते, बिल्कुल इसी प्रकार से आपके अन्दर भी परावाणियाँ हैं जो कि नि:सन्देह उसी परावाणी का प्रतिबिंब है जिसे आप सुन नहीं सकते। अपने पेट में आप वाणी को सुन नहीं सकते परन्तु पेट मे आपको कुछ कष्ट हो सकते हैं विशेष रुप से कैन्सर या ऐसी कोई तकलीफ हो सकती है तब दिखाई पड़ने लगता है कि कोई समस्या है। इससे 'स्पन्दन' होने लगता है। जो चैतन्य लहरियाँ आप प्राप्त करते हैं यह परावाणी का ही प्रभाव है जो दर्शाता है कि कोई कष्ट है। उस कष्ट को आप देख सकते हैं क्योंकि यह धड़कने लगता है। कुण्डलिनी भी जब उठने लगती है तो कोई आवाज़ नहीं करती परन्तु यहाँ सहस्रार पर आ जाती है और यदि कोई समस्या हो तो ऊपर जाते हुए यह उस स्थान पर धड़कती है। जब तक उस स्थान पर रुकावट होती है यह वहाँ पर धड़कती ही रहती है। यह स्वच्छ जल की तरह से है, जब बहता है तो इसमें कोई आवाज़ नहीं आती, परन्तु इसके सम्मुख जब कोई रुकावट आती है, बाधा आती है तो यह आवाज़ करता है। अत: इसमें अन्तर्जात आवाज़ है। अत: एक अन्तर्जात आवाज़ है। जल की टक्कर के कारण आवाज़ आती है और अन्तर्जात रुप से ही यह आवाज़ वाणी का रुप ले लेती है। तो यह मौन आवाज़ इन चारों अवस्थाओं से ऊर्ध्वगति की ओर आकर

जब मुँह तक पहुँचती है केवल तभी यह बैख़री बनती है। परमात्मा का ही उदाहरण लें, जब वे बोलते हैं, कुछ भी बोलते हैं परावाणी की अवस्था को प्राप्त किए बिना उनकी वाणी को कोई नहीं सुन सकता। बिना परावाणी को अनुभव किए आप परमात्मा की आवाज़ को नहीं सुन सकते। तब क्या होता है कि परमात्मा को स्वयं इस पृथ्वी पर अवतरित होना पड़ता है और आपके सम्मुख रहस्यों की व्याख्या करने के लिए अपनी 'बैख़री' का उपयोग करना पड़ता है। उससे आप नीचे की ओर चलने लगते हैं अब आप मध्यमा अवस्था पर आते हैं जहाँ अपनी साक्षी अवस्था का आनन्द लेते हैं और तब 'परावाणी' पर आते हैं जहाँ आपको आवाज़ सुनाई पड़ती है या आप कह सकते हैं कि आपको सूचना मिलती है मात्र सूचना। इसमें कोई आवाज़ नहीं होती, कोई शोर नहीं होता, कुछ नहीं होता, विचारों की कोई आवाज़ नहीं होती। अत: आप 'परावाणी' से प्रेरणा प्राप्त करते हैं, परन्तु विचारों की कोई आवाज़ नहीं होती। इसी प्रकार से यह आवाज़विहीन चीज़ है जो आती है।

जब आप निर्विकल्प अवस्था में पहुँच जाते हैं तो वाणी के माध्यम से आपके मस्तिष्क में प्रेरणा आती है।

एक सहजयोगी का प्रश्न : 'क्या यह भवसागर में है, नाभि में है या किसी विशेष स्थान पर है?'

श्रीमाताजी : नाभि में, यह लक्ष्मी तत्व है। जब महालक्ष्मी चलती है तो सभी कुछ कार्यान्वित होता है परन्तु जब आप आज्ञा से ऊपर जाने लगते हैं तो यह 'वाणी' अनहद के रुप में चलती है। 'अनहद' अर्थात चैतन्य लहरियों की आवाज़। मैं इसे सुन सकती हूँ, मेरे कहने का अर्थ है अगर कोई व्यक्ति मुझ पर हाथ रखे तो वह भी इस आवाज़ को सुन सकता है। आप सभी प्रकार की आवाज़ें सुन सकते हैं और तब यह आपके सिर में आती है। जब यह सहस्रार में पहुँचती है तो यह धड़कन आरंभ करती है और तब ब्रह्मरन्ध्र खुलता है। वाणी आवाज़ बन जाती है और परमात्मा से एकरुप हो जाती है, परन्तु इस अवस्था तक यह मानव में प्राय: यहीं से आती है। इसका यह भाग परमात्मा से है और जब दिया जाता है तो आज्ञा चक्र खुल जाता है और सहस्रार को जब ये पार करता है तो यह वाणी, चैतन्य लहरियों की यह आवाज़ निकलती है। मुख्य बात ये है कि व्यक्ति को यह समझना होता है कि जब आप निर्विकल्प अवस्था में पहुँच जाते हैं तो वाणी के माध्यम से आपके मस्तिष्क में प्रेरणा आती है। वही वाणी आपके मस्तिष्क में प्रेरणा देती है और इस प्रेरणा से आप समझ सकते हैं जैसे मैं कहती हूँ आप बारीकी से चीज़ों को समझें तो इसलिए कहती हूँ क्योंकि आप संवेदनशील सूक्ष्म व्यक्ति बन गए हैं। तो आप भी सूक्ष्म को समझने लगते हैं और सूक्ष्म बातें कहने लगते हैं।

प.पू.श्री माताजी, पुणे, १८.१०.१९८८

..... 'बैखरी' वो शक्ति है जिसके माध्यम से हम बोलते हैं .....बीज मंत्र का अर्थ है 'बैख़री' - 'बैख़री' अर्थात वाक् शक्ति। जिन लोगों को आत्मसाक्षात्कार की शक्ति प्राप्त हो जाती है, वे वाक् शक्ति को मंत्र बना लेते हैं। अत: जब उन्हें अपने चक्रों को सुधारना होता है, या अपने दायें-बायें को सुधारना होता है तो उन्हें बीज मंत्र कहने पड़ते हैं। जब वो बीज मंत्र कहते हैं तो उस भाग को बीज प्राप्त होता है। बीज को अंकुरित होकर बढ़ना होता है। अत: प्रथम स्थान पर उन्हें बीज मंत्र कहना पड़ता है और तत्पश्चात् उन्हें भिन्न चक्रों के भिन्न मंत्र कहने पड़ते हैं। तो एक तो बीज है और फिर वृक्ष। अत: सबसे पहले यदि आप बीज को जानें, तो आप इस मंत्र को कहते हुए अपने अन्दर बीजारोपण कर लेते हैं। इसके बाद आप अन्य सभी मंत्र कहने लगते हैं। अत: इस प्रकार से आप इसे बढ़ाते हैं।

संस्कृत शब्द का उद्भव कुण्डलिनी की गति से होता है, जब उसमें से आवाज़ निकलती है। ये सब चीज़ें महान ऋषियों ने लिख दी थीं और इसी प्रकार के सभी चक्रों के भी उनकी पंखुड़ियों की संख्या के अनुसार स्वर एवं व्यंजन होते हैं। आप कह सकते हैं कि उनमें जो पंखुड़ियाँ होती हैं उनके अनुसार वे संस्कृत भाषा की वर्ण माला बनाते हैं। संस्कृत को पावन बनाया गया है।

ये भाषा पावन बनाई गई। सर्वप्रथम केवल एक ही भाषा थी। उसके अन्दर से दो भाषाओं ने जन्म लिया, एक लैटिन भाषा थी और जिसे पावन किया गया वह संस्कृत भाषा थी। ये संस्कृत भाषा ऋषियों की देन है, उन ऋषियों की जिन्होंने अपने अन्दर ये सब चीज़ें सुनी और इसे बनाया। यह 'बैख़री' की शक्ति है। अब इसकी लिपि 'बैख़री' है, अब शक्ति भी है और यंत्र भी है, परन्तु इसे दिव्य बनाने के लिए आपको इसे मंत्र रूप देना होगा और मंत्र बनाने के लिए जो भी मंत्र आप चाहते हैं पहले उसका बीज मंत्र जानना होगा। यदि आप अपनी कुण्डलिनी उठाना चाहते हैं तो इसका बीज मंत्र है, 'री'। 'री' से आप इस प्रकार मंत्र बना सकते हैं -

'ॐ त्वमेव साक्षात् श्री री साक्षात्..... इसी प्रकार से आप सभी देवी-देवताओं के मंत्र कहते चले जाएं।

आप सब विद्वान बन गए हैं। अब आप यह समझने का प्रयत्न करें कि किस प्रकार यह विद्या आपके अन्दर शनै: शनै: समाती चली जा रही है।

प.पू.श्री माताजी, नवरात्रि पूजा, पुणे, १७.१०.१९८८

निर्मला

राहुरी, १८.१.१९८०,
अनुवादित

यह हर्ष की बात है कि सब सहजयोगी एक साथ एकत्रित हुए हैं। जब हम इस भाँति एकत्रित होते हैं तब परस्पर हित की अनेक बातों पर विचारों का आदान-प्रदान कर सकते हैं और उन विषयों पर अनेक सूक्ष्म बातें एक दूसरे को बता सकते हैं। दो-एक दिन पहले मैंने स्वयं को स्वच्छ, दोष-मुक्त करने की विधि बताई थी। स्वयं आपकी माँ का नाम ही 'निर्मला' है और इसमें अनेक शक्तियाँ हैं।

इस नाम में पहला शब्द 'निः' है जिसका अर्थ है 'नहीं'। कोई वस्तु जिसका वास्तव में अस्तित्व नहीं है किन्तु जिसका अस्तित्व प्रतीत होता है, उसे महामाया (भ्रम) कहते हैं। सम्पूर्ण विश्व इसी प्रकार है। यह दिखता है किन्तु वास्तव में नहीं है। यदि हम इसमें लिप्त हो जाते हैं तो प्रतीत होता है यही सब कुछ है। तब हमें लगता है हमारी आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं है, सामाजिक व पारिवारिक स्थितियाँ असन्तोषजनक हैं। हमारे चारों ओर जो कुछ भी है सब खराब है। हम किसी चीज़ से सन्तुष्ट नहीं हैं।

समुद्र सतह पर जल अत्यन्त गदला होता है। उसके ऊपर अनेक वस्तुयें तैरती रहती हैं। किन्तु यदि हम उसकी गहराई में जायें तो देखेंगे कि उसके भीतर कितना सौन्दर्य, कितनी धन-सम्पदा और कितनी शक्ति है। तब हम भूल जायेंगे कि सतह का जल मैला है।

कहने का अभिप्राय है कि हम चारों ओर जो देखते हैं वह सब माया (भ्रम) है। सर्वप्रथम आपको याद रखना चाहिए कि यह सब जो दिखता है। यह कुछ नहीं है। यदि आपको 'निः' भावना अपने अन्दर प्रतिष्ठित करना है तो जब भी आपके मन में विचार आये तो कहिये यह कुछ नहीं है। यह सब भ्रम है, मिथ्या है। दूसरा विचार आये तो कहिये यह कुछ नहीं है। आपको हर वक्त यह भाव लाना है। तब आप 'निः' शब्द का अर्थ समझ पायेंगे।

आपको जो कुछ माया-रूप दिखता है, यह सम्पूर्णतः भ्रम मात्र नहीं है, इस दृश्यमान के परे भी कुछ है। किन्तु अपने जन्मों के इतने बहुमूल्य वर्ष हमने वृथा गंवा दिये हैं कि हम वे वस्तुयें जिनका वास्तव में अस्तित्व नहीं है उनको महत्व देते हैं और इस भाँति हमने पापों के ढेर इकठ्ठे कर लिये हैं। इन सब वस्तुओं में हमने आनन्द-लाभ करने का प्रयास किया है, किन्तु वास्तव में इनमें से हमें कुछ भी आनन्द प्राप्त नहीं हुआ। तत्व रूप से ये सब कुछ नहीं है।

अतः दृष्टिकोण यह होना चाहिये कि यह सब 'कुछ नहीं' है। केवल ब्रह्म ही सत्य है, अन्य सब मिथ्या है। जीवन के हर क्षेत्र में आपको यह दृष्टिकोण अपनाना है। तब आप सहजयोग को समझेंगे। साक्षात्कार के पश्चात् अनेक सहजयोगी यह सोचते हैं कि हमें सिद्धि (साक्षात्कार) प्राप्त है, हमें पूज्य श्रीमाताजी का आशीर्वाद प्राप्त है तो हम समृद्ध क्यों नहीं है? उनके विचार में परमात्मा का अर्थ है समृद्धि। यदि आप विचार करें कि क्या कारण है कि साक्षात्कार के पश्चात् भी आपका 'स्वभाव' नहीं बदला, देखिये, 'स्व' अर्थात आत्मा और 'भाव' अर्थात् स्वरूप के योग से बना 'स्वभाव' शब्द कितना सुन्दर है। बताइये, क्या आपने अपनी आत्मा का स्वरूप प्राप्त कर लिया है? यदि आप 'आत्मा' में स्थित हो गये तो आप देखेंगे कि भीतर इतना सौन्दर्य है कि आपको बाह्य सब कुछ नाटक सा प्रतीत होगा। जब तक आपमें यह साक्षी स्थिति जागृत नहीं होती, आपने 'निः' शब्द का अनुसरण

नहीं किया, उसके अनुसार आचरण नहीं किया, जब तक कि 'नि:' आपके भीतर प्रतिष्ठित नहीं हुआ है, आप भावुक, अहंकारी, हठी अथवा विनम्र व निराश होते रहते हैं तो इन पराकाष्ठाओं (अति की अवस्थाओं) में फंसे रहने का कारण 'नि:' स्थिति ध्यानयोग में सर्वश्रेष्ठ रूप में प्राप्त की जा सकती है। अपने जीवन में 'नि:' विचार का अनुसरण करने से आप 'निर्विचार' स्थिति प्राप्त कर लेंगे।

सर्वप्रथम आपको निर्विचार होना चाहिये। जब आपके मन में कोई विचार आता है, चाहे वह अच्छा हो अथवा बुरा, तब विचारों का ताँता सा लग जाता है। एक के बाद दूसरा विचार आता रहता है। कुछ लोग कहते हैं कि बुरे विचार का अच्छे विचार से प्रतिकार करना चाहिये, अर्थात् एक दिशा से आने वाली गाड़ी को जब विपरीत दिशा से आने वाली गाड़ी से धकेला जाये तो दोनों एक मध्य स्थान पर रुक जायेंगी। कहीं तक यह ठीक है किन्तु कभी-कभी यह हानिकारक भी हो सकता है। एक कुविचार जब एक सुविचार द्वारा दबाया जाता है तो यह भीतर ही भीतर दबा रहता है। किन्तु यह एकाएक उभर सकता है। अनेक व्यक्तियों के साथ ऐसा ही होता है। वे अपने सामान्य विचारों को दबा रखते हैं और अपने से कहते हैं हमें परोपकारी होना चाहिये, अपने आचरण अच्छे रखने चाहिये, इत्यादि। कभी-कभी ऐसे लोग बड़े उपद्रवग्रस्त हो सकते हैं। अचानक एकदम यह क्रोध के वशीभूत हो जाते हैं और लोग चकित हो जाते हैं कि ये सज्जन व्यक्ति कैसे इतने क्रोध-ग्रस्त हो गये। वे अपनी निजी मानसिक शान्ति भी खो बैठते हैं। उनका सम्पूर्ण आन्तरिक सौंदर्य समाप्त हो जाता है। अत: वांछनीय यही है कि हम सदैव निर्विचार रहें। अपने मस्तिष्क से छोटे विचारों पर काबू पायें। तब आप स्वत: ही मध्य में रहेंगे।

आपको समस्त प्रयत्न करने चाहिये। अब आप पूछेंगे, 'माँ, बिना विचार किये हम काम कैसे कर सकते हैं?' अब आपके विचार क्या हैं? वह वास्तव में खोखले हैं। निर्विचार अवस्था में आप परमात्मा की शक्ति के साथ एकरूप हो जाते हैं। अर्थात् बूँद (अर्थात् आप स्वयं) समुद्र (अर्थात् परमात्मा) में आकर मिल जाती है। तब परमात्मा की शक्ति भी आपके भीतर आ जाती है। क्या आप की अंगुली सोचती है? क्या यह फिर भी चल नहीं रही? अपने विचारों को परमात्मा को समर्पित कर दें और अपने विषय में सोचने का भार उस पर छोड़ दें। किन्तु यह कठिन सा है क्योंकि आप निर्विचार स्थिति में नहीं है।

अनेक लोग कहते हैं हमने सब परमात्मा को समर्पण दिया है। किन्तु यह केवल मौखिक होता है, वास्तव में नहीं। समर्पण मौखिक क्रिया नहीं है। निर्विचारिता प्राप्त करने के लिये, जिसका अर्थ है आपका विचार करना बन्द कर देना, आपको समर्पण करना पड़ता है। जब आपकी विचार क्रिया बन्द हो जाती है तब आप मध्य में आ जाते हैं। मध्य में आते ही तुरन्त आप निर्विचार चेतना में पहुँच जाते हैं अर्थात् आप परमात्मा की शक्ति के साथ एकरूप हो जाते हैं और जब ऐसा होता है तब वह (परमात्मा) आपकी देख-रेख करता है। वह आपकी छोटी-छोटी बातों के विषय में सोचता है। यह आश्चर्यजनक है। किन्तु आप करके तो देखें और आप देखेंगे कि आपका पहला रास्ता गलत था। अत: एक बार जब आप निर्विचारिता का स्वाद लेते हैं तो आप देखते हैं कि आपको समस्त प्रेरणायें, समस्त शक्तियाँ और अन्य सर्वस्व प्राप्त होने लगता हैं। निर्विचारिता में

आपके मन में जो विचार आता है वह एक अन्तः स्फुरण होता है। आप चकित होंगे। प्रत्येक वस्तु आपके सामने ऐसे आयेगी मानो थाली में परोसकर आपके सम्मुख प्रस्तुत कर दी गई। आप भाषण देने खड़े होते हैं, केवल निर्विचारिता में प्रवेश कीजिये और श्रीगणेश कर दीजिये। यद्यपि आपने पहले कभी भाषण नहीं दिया, भाषण की कला का आपको कुछ ज्ञान नहीं अथवा प्रस्तुत विषय का आपको कुछ विशेष ज्ञान नहीं किन्तु चमत्कार! आप इतना कमाल का बोलेंगे कि लोग आश्चर्यचकित हो जायेंगे कि यह ज्ञान भण्डार आप में कहाँ से उमड़ पड़ा। एक बार आप निर्विचारिता में गहरे उतरे तो सब कुछ वहीं से (निर्विचारिता से) आता है, न कि आपके मस्तिष्क से।

अब मैं आपको अपना रहस्य बताती हूँ। आप प्रार्थना कीजिये, 'माँ, मेरे लिये कृपया ऐसा कर दीजिये।' आप आश्चर्य करेंगे। मैं आपकी विनती पर विचार नहीं करती। केवल उसे अपनी निर्विचारिता को समर्पित कर देती हूँ। सम्पूर्ण संयन्त्र वहाँ क्रियाशील होता है। उसे (विचार को) उस संयन्त्र (निर्विचारिता) में डालिये और माल तैयार होकर आपके सम्मुख आ जाता है। आप उस संयन्त्र को यों कहें नीरव अथवा शान्त संयन्त्र को काम तो करने दीजिये। अपनी सारी समस्यायें उसको सौंपिये। किन्तु बुद्धिजीवियों के लिये यह अत्यन्त कठिन है क्योंकि उनको प्रत्येक बात के बारे में सोचने की आदत होती है।

किसी विषय को समझने की कोशिश करते समय आप निर्विचारिता में प्रवेश करने की क्षमता प्राप्त कीजिये। आप देखेंगे सब कुछ स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है। आप जो अनुसन्धान करते हैं वह भी निर्विचार अवस्था में करना चाहिये। निर्विचार अवस्था में कार्यरत रहने का अभ्यास कीजिये। इस भाँति आप अति उत्तम ढंग से अपना अनुसन्धान कार्य कर सकते हैं। मैं अनेक विषयों पर बोलती हूँ। अपने जीवन में मैंने कभी विज्ञान का अध्ययन नहीं किया और उस विषय में कुछ नहीं जानती। फिर यह सब ज्ञान कहाँ से आता है? निर्विचारिता से। मैं बोलती जाती हूँ आरै जो कुछ होता है उसे देखती रहती हूँ। मेरे वाणीरूपी कम्प्यूटर में मानो यह सब कुछ पहले से तैयार करा कराया रखा था। यदि आप निर्विचार अवस्था में नहीं हैं तो आप उस कम्प्यूटर (अर्थात् निर्विचारिता) का उपयोग नहीं कर रहे हैं और अपने मस्तिष्क को उसके ऊपर प्रतिष्ठित करते हैं (अर्थात् आपका निर्विचारितारूपी कम्प्यूटर निष्क्रिय रहता है और आपके सब कार्य मानव मस्तिष्क शक्ति, जो सीमित है, उसके बल पर होते हैं) निर्विचारिता एक प्राचीन कम्प्यूटर है और इसकी शक्ति से विपुल परिमाण में सही कार्य किया गया है। यदि आप अपने मस्तिष्क का उपयोग करते हैं और इस कम्प्यूटर का आश्रय नहीं लेते तो आप निश्चय रूप से गलतियाँ करेंगे।

निर्विचार अवस्था में जो कुछ भी घटित होता है वह प्रबुद्ध और प्रकाशमान होता है। हिन्दी, मराठी तथा संस्कृत भाषाओं में किसी शब्द से पहले 'प्र' युक्त करने से उसका अर्थ होता है प्रकाशित, प्रकाशमान। प्रकाश कभी बोलता नहीं। यदि आप कमरे की बत्ती जला दें, तो वह बत्ती (दीप) बोलेगी नहीं अथवा कोई विचार आपको नहीं देगी। वह केवल सब कुछ दृष्यमान (प्रकट) कर देगी। यही बात निर्विचारिता रूप प्रकाश के बारे में है। निर्विचार, निरंकार (अर्थात अहंकार रहित) इत्यादि सब शब्दों के पहले 'निः' जुड़ा है। आप इसे

(अर्थात् 'निः' को) अपने भीतर स्थापित कीजिये और तब आप निर्विकल्प अवस्था में आ जायेंगे। पहले निर्विचार, तत्पश्चात् निर्विकल्प। तब आपके समस्त सन्देह व शंकायें समाप्त हो जाती हैं और आपको प्रतीत होता है कि कार्य करने वाली शक्ति अत्यन्त द्रुत गति से काम करती है और अत्यन्त सूक्ष्म है। आप आश्चर्य करेंगे यह सब कैसे घटित होता है।

यही बात समय के विषय में है। मैं कभी घड़ी की तरफ नहीं देखती। यह कभी-कभी रूक जाती है, कभी ग़लत समय बताती है। किन्तु मेरी असली घड़ी निर्विचारिता में है। यह हमेशा स्थिर (शान्त) रहती है। यदि कोई कार्य करना हो तो वह उचित् समय पर हो जाता है। फिर मन में कुछ पश्चाताप नहीं होता कि यह समय पर हुआ अथवा देरी से। जब भी हो, मुझे कोई चिन्ता नहीं।

कल मेरी गाड़ी (कार) खराब हो गई। किन्तु मैं आनन्दमग्न थी क्योंकि मैं तारांगणों को देखना चाहती थी। वह सौन्दर्य लन्दन में उपलब्ध नहीं होता। अतः मैं वह देखना चाहती थी। इसका सौन्दर्य सम्पूर्ण आकाश में व्याप्त था। आकाश की अभिलाषा थी माँ उसकी इस छटा को देखें। कभी-कभी मुझे उस ओर भी देखना आवश्यक होता है। मैं उस आनन्द का लाभ उठा रही थी। संक्षेप में, आपको किसी वस्तु का दास नहीं होना चाहिये।

यदि आप निर्विचार अवस्था में हैं तो परमात्मा आपको सर्वत्र ले जाते हैं मानो अपने हाथों पर उठा कर, ऐसी सरलतापूर्वक। वह सब प्रबन्ध कर देते हैं। वह सब कुछ जानते हैं और उन्हें कुछ भी बताने की आवश्यकता नहीं। किन्तु आपको देखना है कि आप मुख्य धारा (निर्विचारिता) में हैं अथवा नहीं। यदि आप इसमें नहीं हैं और आप कहीं किनारे पर अटके हैं तो प्रवाह तरंग आती है और आपको मुख्य धारा में ले जाती है, एक बार, दो बार, तीन बार। किन्तु यदि आप फिर भी किनारे पर आकर अटक जाते हैं, तब आप कहते हैं, 'माताजी, मेरा कोई कार्य सुचारु रूप से नहीं होता।' वास्तव में होगा भी नहीं। कारण, आप किनारे पर अटके हैं।

श्री गणेश की जो आप स्तुति गान करते हैं वह अत्यन्त सुन्दर है। इसमें कहते हैं 'मुख्य धारा (प्रवाह) में प्रवाहित.....' जिसका अर्थ है प्रकाशमान मुख्य धारा (प्र+वाह)। आप इसमें अपनी पृथक् लहर, तरंग न मिलायें। श्री गणेश की आरती में यह भी आता है 'निर्वाणी रक्षावे' अर्थात् मृत्यु के समय मेरी रक्षा करें। आप यह भी कहते हैं, 'रक्षः रक्षः परमेश्वरी' हे परमात्मा, आप मेरी रक्षा करें। किन्तु आप स्वयं ही अपनी रक्षा करना चाहते हैं। पर परमात्मा को आपकी रक्षा अपने आप ही करने दो।' मैं इस बात पर बल देना चाहती हूँ कि आपको गहराई में जाना सीखना चाहिये और निर्विचारिता में ही सब कुछ प्राप्त करना चाहिये। तभी आप निर्विकल्प स्थिति प्राप्त कर सकते हैं।

आपको निरासक्त रहना चाहिये। यहाँ भारत में लोग कहते हैं, 'मेरा बेटा, मेरी बेटी।' इंग्लैण्ड में इसके विपरीत होता है। वहाँ बेटा, बेटी किसी से कोई लगाव (आसक्ति) नहीं होती। वे केवल अपने स्वयं के बारे में सोचते हैं। यहाँ हर चीज़ में 'मेरा, मेरा' मेरा लड़का, मेरी लड़की, मेरा मकान और अन्त में विचारों में केवल

'मैं' और 'मेरा' ही बाकी रह जाता है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। आपको कहना चाहिये, 'मेरा कुछ भी नहीं है, सब कुछ आपका ही है।' सन्त कबीर कहते हैं, 'जब तक बकरी जीवित रहती है तब तक वह 'मैं, मैं' करती है, किन्तु उसको मारने के बाद उसकी आँतों के तारों से जो ताँत (जिससे धुनिया रुई धुनता है) बनती है। उसमें से 'तू ही, तू ही' आवाज़ आती है।' आपको भी 'तू-ही, तू-ही' भावना में मग्न रहना चाहिये। जब आप 'मैं नहीं हूँ, मेरा कोई अस्तित्व नहीं है' इस भावना में दृढ़ स्थित हो जाते हैं तभी आप 'निः' शब्द को समझ सकेंगे।

अब 'निर्मला' नाम के अन्तिम अक्षर 'ला' के विषय में विचार करें। मेरा दूसरा नाम है 'ललिता'। यह देवी का आशीर्वाद है। यह उसका आयुध है। जब 'ला' अर्थात् 'देवी' ललिता रूप धारण करती है अथवा जब शक्ति ललित अर्तात् क्रियाशील रूप में परिणत होती है अर्थात् जब उस में चैतन्य लहरियाँ प्रवाहित होती हैं, जो आप अपनी हथेलियों पर अनुभव कर रहे हैं, वह शक्ति 'ललिता शक्ति' है। यह सौन्दर्य एवं प्रेम से परिपूर्ण है। जब प्रेम की शक्ति जागृत होती है तब वह 'ला' शक्ति बन जाती है। यह आपको चारों ओर से घेर लेती है। जब वह क्रियाशील होती है तब चिन्ता कैसी? तब आपकी कितनी शक्ति होती है? क्या आप वृक्ष से एक फल भी बना सकते हैं। फल की तो बात क्या, आप एक पत्ता अथवा जड़ भी नहीं बना सकते। केवल मात्र 'ला' शक्ति यह सब कार्य करती है। आपको जो आत्मसाक्षात्कार प्राप्त हुआ है वह भी इसी शक्ति का काम है। इसी शक्ति से 'निः' तथा 'म' (निर्मला नाम के प्रथम व द्वितीय अंश) शक्तियों का जन्म हुआ है। 'निः' शक्ति ब्रह्मदेव की श्री सरस्वती शक्ति है। सरस्वती शक्ति में आपको 'निः' के गुण अर्जन (प्राप्त) करने चाहिये। 'निः' शक्ति प्राप्त करने का अर्थ है पूर्णतः निरासक्त बनना। आपको पूरी तरह निरासक्त बनना चाहिये।

'ला' शक्ति में प्रेम का समावेश (सम्मिलित) है वह हमारा दूसरों से नाता जोड़ती है। 'ल' शब्द 'ललाम', लावण्य में आता है। 'ला' शब्द में उसका अपना ही विशेष माधुर्य है। और आपको उससे (माधुर्य से) अन्य लोगों को प्रभावित करना चाहिये। दूसरों से बातचीत करते समय आपको इस शक्ति का प्रयोग करना चाहिये। चराचर में यह प्रेम की शक्ति व्याप्त है। ऐसी स्थिति में आपका क्या कर्तव्य है? आपको अपने सारे विचार प्रथम (निः) शक्ति पर छोड़ देना चाहिये क्योंकि विचारों का जन्म उस प्रथम शक्ति से ही होता है। अन्तिम (ला) शक्ति, जो प्रेम और सौन्दर्य की शक्ति है, उससे आपको प्रेम के आनन्द का रसास्वादन करना चाहिये। यह कैसे करें? अपने आपको दूसरों के प्रति प्रेम भाव में भूल जायें, उस भाव में खो जायें। क्या किसी से अनुमान लगाया है कि वह दूसरों से कितना प्रेम करता है? यह बढ़ता ही रहना चाहिये। आप दूसरों को कितना प्यार करते हैं और इस भाव में कितना आनन्द लेते हैं? क्या इस बारे में आपने सोचा है? मानवों के विषय में मैं कह नहीं सकती, किन्तु अपने स्वयं के विषय में मैं कह सकती हूँ कि मैं दूसरों से प्रेम करने में अत्यन्त आनन्द अनुभव करती हूँ अनुभव करें, कैसे चारों ओर प्रेम की गंगा बह रही है, वह अनुभूति कितनी आनन्ददायक है। एक गायक को देखिये, वह कैसे अपने स्वयं के राग में अपने आपको भूल जाता है, उसमें खो जाता है और सर्वत्र उस संगीत को प्रवाहित होते अनुभव करता है। इसी भाँति प्रेम भी अबाधित रुप से

प्रवाहित होना चाहिये। अत: आप 'ललाम' शक्ति, जो चैतन्य लहरियों के रुप में विशुद्ध दिव्य प्रेम की शक्ति है उसे पहले अपने भीतर जागृत करें।

आप देखें कि आप दूसरों की ओर किस दृष्टि से देखते हैं। कुछ निम्न स्तर के लोग दूसरों से कुछ चुराने अथवा उनसे कुछ लाभ उठाने के भाव से देखते हैं, कुछ दूसरों के दोषों को देखते हैं। पता नहीं इसमें उन्हें क्या आनन्द आता है। इस भाँति वे अकेले, अलग-अलग हो जाते हैं और फिर कष्ट भोगते हैं। यह स्वयं कष्टों को निमन्त्रण देना है। मुझे तो सबसे मिलने, भेंट करने में आनन्द आता है।

आपको 'ललाम' शक्ति को जो चैतन्य लहरी रुप में दिव्य प्रेम की शक्ति है-उपयोग करना चाहिये। दूसरे व्यक्ति को देखने मात्र से आप निर्विचारिता में पहुँच जायें। इससे दूसरा व्यक्ति भी निर्विचार हो जायेगा। अत: आप अपने को एवं दूसरों को भी विशुद्ध दिव्य प्रेम का बन्धन दें। 'नि:' शक्ति और 'ला' शक्ति को बंधन दें। 'ला' शक्ति अर्थात् चैतन्य लहरियों के रुप में प्रेम की शक्ति को 'नि:' शक्ति अर्थात् निर्विचारिता में पहुँचाना, परिणत करना है। दोनों को बन्धन देना लाभप्रद है। बहुत से लोगों से, जो बड़े अभिमानी हैं अथवा जो सोचते हैं कि वे बड़े काम करने वाले, कर्मवीर हैं, उनसे मैं अपनी बायें पार्श्व को उठाने को बताती हूँ। इस भाँति हम अपने स्वयं के पंच तत्वों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश) में अपने स्वयं के विशुद्ध दिव्य प्रेम को भरते हैं, संचारित करते हैं। अपने हृदय के प्रेम की शक्ति (हमारा बायां पार्श्व) को अपनी क्रिया शक्ति (हमारा दायां पार्श्व) में पहुँचाना चाहिये, जैसे आप कपड़े पर रंगो से चित्रण करते हैं। जब इस भाँति क्रिया शक्ति में प्रेम शक्ति का सम्मिश्रण किया जाता है तब वह व्यक्ति अत्यन्त मधुर बन जाता है और क्रमश: वह माधुर्य, प्रेम उसके व्यक्तित्व और उसके आचरणों में प्रकाशमान होता है। वह प्रेम प्रवाहित होकर दूसरों को प्रभावित करता है और उसकी प्रत्येक क्रिया अत्यन्त रसमय हो जाती है। वह व्यक्ति इतना आकर्षणयुक्त बन जाता है कि आप घण्टों उसकी संगति में आनन्द और प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। आपका प्रेम दूसरों को आनन्ददायक और दूसरों के मन को जीतने वाला बनना चाहिये। इसके फलस्वरूप सब आपके मित्र बन जाते हैं और परस्पर प्रेम बढ़ता है। प्रत्येक अनुभव करता है कि एक स्थान है जहाँ उसे प्रेम और वात्सल्य मिल सकता है। अत: आपको प्रेम की ईश्वरीय शक्ति को अपने भीतर विकसित करना चाहिये।

हमें सदैव निर्विचारिता ('नि:' शक्ति) में रहना चाहिये। जब भी कोई विचार आये तो सोचिये ईश्वर की प्रेमरूपी पवित्र गंगा में यह गन्द कहाँ से आ गयी? ऐसी चित्त-वृत्ति से हमारी 'ला' शक्ति अर्थात् दिव्य प्रेम की शक्ति सदैव स्वच्छ, निर्मल रहेगी और स्वच्छता के आनन्द में हम विभोर रहेंगे।

आप दूसरों की टीका-टिप्पणी न करें। यदि आप मुझसे किसी व्यक्ति के विषय में पूछे तो मैं केवल उसकी कुण्डलिनी की अवस्था के विषय में बता सकती हूँ अथवा उसका कौन सा चक्र इस समय पकड़ा हुआ है अथवा बहुधा पकड़ा रहता है। इसके अतिरिक्त मैं कुछ नहीं समझ सकती कि वह कैसा है? उसका स्वभाव कैसा है? इत्यादि। यदि इस विषय में मुझसे पूछा जाये तो मैं कहूंगी, स्वभाव होता क्या है? यह परिवर्तनशील होता है। नदी इस समय यहाँ बह रही है। बाद में उसका बहाव कहाँ होगा, कौन बता सकता है?

इस समय आप कहाँ हैं? यही विचार करने की बात है। आप नदी के इस किनारे पर खड़े हैं तो आपको विचित्र लगता है कि नदी यहाँ बह रही है। मैं समुद्र की दिशा में खड़ी हूँ। इस कारण मैं जानती हूँ इसका उद्गम-स्थल कौन सा है। अत: **आप किसी को भी व्यर्थ, निकम्मा न कहें। प्रत्येक व्यक्ति बदलता रहता है, यह अवश्य होता है।** सहजयोग का कार्य परिवर्तन लाना है। सहजयोग में विश्वास करने वाले व्यक्तियों को किसी को नहीं कहना चाहिये कि वह बेकार हो गया है। प्रत्येक को स्वतन्त्रता होनी चाहिये। आप सब जानते हैं हमारी वर्तमान स्थिति क्या है। यदि आप इस भाँति सोचेंगे तो आप न केवल अपने स्वयं का आत्मसम्मान करते हैं, बल्कि दूसरों का भी सम्मान करते हैं। जिसमें आत्मसम्मान नहीं है, वह दूसरों का भी आदर नहीं कर सकता।

हमें ललाम शक्ति का विकास करना चाहिये। एक पुस्तक लिखकर भी मैं इसका आनन्द पर्याप्त रुप से वर्णन नहीं कर सकती क्योंकि सौंदर्य को प्रकट करने के लिये शब्द असमर्थ हैं। अर्थात् यदि आपको 'मुस्कान' का वर्णन करना हो तो आप केवल कह सकते हैं कि स्नायु कैसे आन्दोलन करते हैं। आप उसके प्रभाव को नहीं बता सकते। यह तो केवल अनुभव की वस्तु है। आप केवल इस शक्ति को जागृत और विकसित होने का अवसर दें।

'ललाम' शक्ति से मनुष्य को एक प्रकार का सौन्दर्य, एक भव्यता और स्वभाव में माधुर्य प्राप्त होता है। इस शक्ति को अपने वचन, कर्म तथा अन्य क्रिया-कलापों में विकसित करने का प्रयास करें। कुछ लोगों का रोष भी मनोहारी होता है। इस मधुर, मनोहारी शक्ति को 'ललित' शक्ति कहते हैं। लोगें ने इसके भाव को बिल्कुल विकृत कर दिया है। वे कहते हैं यह संहार की शक्ति है। किन्तु यह बिल्कुल ठीक नहीं है। यह शक्ति अति मनोरम, सृजनात्मक और कलात्मक है। मानो आपने एक बीज बोया। उसके कुछ अंश नष्ट हो जाते हैं, जिसे 'ललित' शक्ति कहते हैं। किन्तु यह विनाश अत्यन्त कोमल और सरल होता है। तब बीज उगकर एक वृक्ष बनता है जिसमें पत्ते होते हैं। फिर पत्ते झड़ते हैं। यह क्रिया भी अत्यन्त सुकोमल व सरल होती है। तब फूल आते हैं। जब फूल-फल बनते हैं, तब उनके अंश झड़ कर गिर जाते हैं और तब फल आते हैं। उन फलों को भी खाने के लिये काटा जाता है। खाने पर आपको स्वाद प्राप्त होता है। वह भी यही शक्ति है। इस प्रकार ये दोनों शक्तियाँ काम करती हैं। आप जानते हैं बिना काटे, सँवारे आप कोई मूर्ति नहीं बना सकते। यदि आप समझ लें कि यह काटना, सँवारना भी उसी जाति की क्रिया है तो यदि आपको कभी ऐसा करना पड़े तो आपको बुरा अनुभव नहीं करना चाहिये। वह भी आवश्यक है। किन्तु एक कलाकार इसे कलापूर्ण ढंग से करता है और कला हीन व्यक्ति इसे बेढंगे तरीके से करता है। सो आप में कितनी कला है इस पर यह शक्ति निर्भर करती है।

कभी आप एक चित्र को देखते हैं और आप इसकी ओर देखते ही रहें । यदि कोई पूछे इस चित्र में क्या विशेषता है तो आप शब्दों में नहीं बता सकते। आप बस उन्हें निहारते हैं। कुछ चित्र ऐसे होते हैं कि आप उनकी ओर देखने मात्र से निर्विचार हो जाते हैं। इस निर्विचार अवस्था में आप उसके आनन्द का रसास्वादन करते हैं। यह अवस्था सर्वोत्कृष्ट है। इसकी किसी अन्य वस्तु से तुलना अथवा मुस्करा कर व्यक्त करने के स्थान पर आपको इस स्थिति के आनन्द का मन भरकर रसास्वादन करना ही उचित है। इसका वर्णन करने के

लिये न कोई शब्द है और न कोई भाव-भंगी (मुखाकृति) पर्याप्त है। आपको इसका अपने अन्दर अनुभव करना है। सबको यह अनुभव लाभ होना चाहिये।

'नि:' और 'ला' के मध्य में 'म' शब्द अत्यन्त रोचक है। 'म' महालक्ष्मी का प्रथम अक्षर है। 'म' धर्म (पवित्र आचरण) की शक्ति है और हमारी उत्क्रान्ति की भी। 'म' शक्ति में आपको समझना होता है, फिर उसे आत्मसात करना होता है और पूर्णत: कुशलता प्राप्त करनी होती है। उदाहरण के लिये, एक कलाकार में 'ल' शक्ति से उसके सृजन का विचार अंकुरित होता है 'नि' शक्ति द्वारा उसका निर्माण करता है और 'म' शक्ति के द्वारा वह उसे अपने विचार के अनुरूप बनाता है। प्रत्येक पग पर वह देखता है कि क्या यह उसके विचार के अनुरुप है और यदि नहीं तो वह उसमें सुधार करने की कोशिश करता है। वह यह बार-बार करता है। यह 'म' शक्ति है अर्थात् यदि कोई वस्तु ठीक नहीं है तो एक बार, दो बार, बार-बार करें।

इस सुधार कार्य में परिश्रम लगता है। हमें अपने स्वयं का भी सुधार करना चाहिये। यदि यह न होता तो उत्क्रान्ति की क्रिया असम्भव थी। इसके लिये परमात्मा को महान परिश्रम करना पड़ता है। हमें 'म' शक्ति अर्जित करनी है और उसे सम्भाल कर रखना है। यदि यह न किया जाये तो दूसरी दोनों शक्तियाँ समाप्त हो जाती हैं, क्योंकि यह शक्ति सन्तुलन बिन्दु है। आपको सन्तुलन बिन्दु पर स्थित रहना चाहिये और हमारी उत्क्रान्ति का सन्तुलन बिन्दु 'म' शक्ति है। अन्य दोनों शक्तियाँ तभी आपके भीतर सक्रिय होंगी जब आप उत्क्रान्ति शक्ति के अनुरुप उन्नति करें। किन्तु उसके लिये आपको 'म' शक्ति को पूर्णत: समझना होगा और उसे विकसित करना होगा।

जब तक आप आत्मसाक्षात्कार को प्राप्त नहीं करते हैं तब तक आप कह सकते हैं कि यदि ईश्वर आपसे प्रेम करते हैं तो उन्हें आपके पास आना चाहिये, किन्तु साक्षात्कार प्राप्ति के पश्चात् आप ऐसा न कह सकेंगे। क्योंकि 'म' शक्ति के बल पर आपको दूसरी दो शक्तियों का सन्तुलन करना है। संगीत में आपको रागों का सन्तुलन करना पड़ता है, चित्रकला में आपको रंगों का सन्तुलन करना पड़ता है। इसी भाँति आपको 'नि:' और 'ला' शक्तियों का सन्तुलन करना आवश्यक है। इस सन्तुलन प्राप्ति के लिये आपको परिश्रम करना पड़ेगा। अनेक बार आप वह सन्तुलन खो बैठते हैं। जो सहजयोगी इस सन्तुलन को बनाये रखता है वह उच्चतम स्तर पर पहुँच जाता है।

बहुत भावुक सहजयोगी ठीक नहीं। इसी तरह बहुत ज्यादा कामों में फँसा रहने वाला सहजयोगी भी ठीक नहीं। आपको अपने प्रेम की शक्ति को सक्रिय करना चाहिये और देखना चाहिये कि अब तक वह कैसी क्रियाशील रही है। उदाहरणार्थ, मैं किसी एक ढंग से काम करती हूँ किन्तु उसमें भी मैं प्रत्येक बार कुछ परिवर्तन कर देती हूँ। आपने देखा होगा कि हर बार कुछ नवीनता, कोई नया तरीका होता है। यदि एक तरीके से काम नहीं चलता, दूसरा तरीका अपनाइये। यदि यह भी असफल रहता है तो और कोई ढूंढिये। किसी भी पद्धति पर अटल नहीं होना चाहिये। आप प्रात: उठते हैं, सिंदूर लगाते हैं, श्री माँ को नमस्कार करते हैं। यह सब यान्त्रिक होता है। यह जीवन्त प्रक्रिया नहीं है। जीवन्त प्रक्रिया में आपको नित्य नयी पद्धतियाँ खोजनी

होंगी। मैं सदैव वृक्ष की जड़ का उदाहरण देती हूँ। बाधाओं से मोड़ लेते हुए, बचते हुए, यह क्रमशः नीचे और नीचे पृथ्वी के भीतर उतरती चली जाती है। यह बाधाओं से झगड़ती नहीं। बाधाओं के बिना जड़ें वृक्ष को संभाल भी नहीं सकती थीं। अतः समस्यायें, बाधायें आवश्यक है। वे न हों तो आप उन्नति भी नहीं कर सकते। वह शक्ति, जो आपको बाधाओं पर विजय पाना सिखाती है, वह 'म' शक्ति है। अतः यह 'म' शक्ति अर्थात् माँ की शक्ति है। उसके लिये विवेक प्रथम आवश्यक गुण है।

सोचिये, कोई व्यक्ति का बड़ा कोमल स्वभाव है और कहता है 'माँ, मैं अत्यन्त मृदु हूँ, मैं क्या कर सकता हूँ।' मैं उससे कहती हूँ अपने को बदलो और एक सिंह बनो। यदि कोई दूसरा व्यक्ति सिंह है, तो मैं उसे बकरी बनने को कहती हूँ। अन्यथा काम नहीं चलता। आपको अपने तरीके बदलने होंगे। जो व्यक्ति अपने तरीके नहीं बदल सकता, वह सहजयोग नहीं फैला सकता, क्योंकि वह एक ही तरीके पर जमा रहता है जिससे लोग ऊब जाते हैं। आपको नये मार्ग खोजने होंगे। इसी भाँति 'म' शक्ति कार्य करती है। महिलायें इसमें निपुण होती हैं। ये प्रतिदिन नये व्यंजन (भोज्य पदार्थ, रेसिपिज) बनाती हैं और पति जानने को उत्सुक रहते हैं कि आज क्या बना है।

यह वह शक्ति है जिसके द्वारा आप अपना सन्तुलन और एकाग्रता प्राप्त कर सकते हैं। जब आप इस शक्ति को उच्चतम स्तर पर विकसित कर लेते हैं तब आप अपने सन्तुलन तथा बुद्धि स्तर से चैतन्य लहरियाँ अनुभव करते हैं। यदि आप में बुद्धिमानी नहीं है तो आप में उक्त लहरियाँ प्रभावित नहीं होंगी।

जब आप सन्तुलन तथा बुद्धि खो देते हैं तो स्वाभाविक रुप से आपके चक्र पकड़े (बाधाग्रस्त) जाते हैं । जब आपके चक्र बाधाग्रस्त हों तो समझ लीजिये आपका सन्तुलन बिगड़ गया है। असन्तुलन संकेत करता है कि 'म' शक्ति आपमें दुर्बल है। 'माताजी' अर्थ वाचक किसी भी शुभ नाम का प्रथम अक्षर 'म' होता है और वह कार्य मेरे भीतर 'म' शक्ति द्वारा किया गया है। यदि केवल 'नि' और 'ल' दो शक्तियाँ ही होती, तो यह कार्य सम्भव नहीं था। मैं तीनों शक्तियों सहित आयी हूँ, किन्तु 'म' शक्ति सर्वोच्च है। आपने देखा 'म' शक्ति माँ की शक्ति है। यह सिद्ध करना होगा कि वह आपकी माँ है। यदि कोई आकर कहे, 'मैं आपकी माँ हूँ' तो क्या आप मान लेंगे ? नहीं, आप स्वीकार नहीं करेंगे। मातृत्व को सिद्ध करना होगा।

माँ ने अपने हृदय मे हमें स्थान दिया है। हमें माँ पर और माँ को हम पर पूर्ण अधिकार है क्योंकि वह हमें अपार प्यार करती है। उसका प्रेम नितान्त निःस्वार्थपूर्ण है। वह सदैव हमारी मंगल कामना करती है और उसके हृदय में हमारे लिये वात्सल्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। माँ में आपको आस्था तभी प्राप्त होगी जब आप यह समझ लेंगे कि आपकी वास्तविक शोभा, अर्थात् आपकी आत्मा, उनमें ही वास करती है। आप दूसरें को यह सिद्ध करके दिखायें। सहजयोगी में ऐसा सामर्थ्य होना चाहिये। अन्य लोगों को पता हो कि वह एक बुद्धिमान व्यक्ति है। उसके लिये आप में प्रेम और क्रियाशीलता दोनों शक्तियों में सन्तुलन आवश्यक है। वह इतना मनोहारी होना चाहिये कि बिना जाने अन्य लोग ऐसे व्यक्ति से प्रभावित हों। सहजयोगी को यह गुण अर्जन करना चाहिये।

घर जाकर आप विचार करें कि इन तीनों 'नि', 'ला' और 'म' शक्तियों को कैसे सक्रिय कर प्रयोग करें। 'निः' शक्ति आपके परिवार में पूर्ण सौंदर्य और गम्भीरता, गहराई लायेगी। जन सम्पर्क के आप नये-नये मार्ग और साधन खोजें। इन शक्तियों का आप सहजयोग के प्रचार के लिये उपयोग करें। उनके उचित उपयोग के लिये आपकी 'निः' शक्ति, अर्थात् क्रियाशक्ति, अत्यन्त बलशाली होनी चाहिये। यद्यपि आप में 'ला' शक्ति अर्थात् प्रेम की शक्ति होनी चाहिये, किन्तु यह 'निः' शक्ति के साथ-साथ संयुक्त रुप से क्रियान्वित होनी चाहिये। यदि एक तरीका सफल नहीं होता, तो दूसरा तरीका अपनाइये। पहले लाल और पीला लें, यदि यह उपयुक्त नहीं रहता तो लाल और हरा उपयोग करें और यदि यह भी ठीक नहीं रहता तो और अन्य कोई उपयोग करें। हठी होना, किसी बात पर अड़ना बुद्धिमानी नहीं है। हठधर्मी व्यक्ति सहजयोग में कुछ नहीं कर सकता। आपका उद्देश्य तो केवल सहजयोग का प्रचार करना है, तो विभिन्न मार्ग अवलम्बन कर देखिये। आप जो भी आग्रह करते हैं वही मैं स्वीकार कर लेती हूँ क्योंकि मैं जानती हूँ कि साधारण मानव मेरी भाँति नहीं है। हठधर्मी व्यक्ति क्या कर बैठे, कहा नहीं जा सकता। आप उसे पराकाष्ठा अर्थात् हद पर जाने की स्थिति न आने दें। 'म' शक्ति से मैं यह सब जानती हूँ। किन्तु आप सहजयोगियों को किसी एक बात पर हठ नहीं करना चाहिये। आपकी माँ हठ नहीं करती। जो भी स्थिति हो, स्वीकार कर लें। आप जो भी करें, ध्यान रखें कि आप एक महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। मुझ में कोई इच्छा नहीं है। मुझ में 'निः', 'ला', 'म' कोई शक्ति नहीं है। मुझ में कुछ भी नहीं है। मैं यह भी नहीं जानती कि मैं स्वयं इन शक्तियों की मूर्तस्वरुप हूँ। मैं केवल सब खेल देखती हूँ।

जब जीवन में इस प्रकार परिवर्तन आ जायेगा तब मनुष्यों में सिद्ध सहजयोगीजन होंगे जिन्हें सहजयोग में पूर्ण सिद्धता, निपुणता प्राप्त होगी। अभी तक वे सिद्ध नहीं हुये हैं। आपको सिद्धता प्राप्त करनी है। सिद्ध सहजयोगी वह है जो पूर्ण रुप से परमात्मा से एकरुप हो जाये और उसे अपने वश में कर ले। उसको उसके लिये सर्वस्व अर्पित करना होता है। मैं जा रही हूँ। उसके बाद देखेंगे आप अपनी सिद्धता का किस भाँति और किस क्षेत्र में उपयोग करते हैं।

कभी-कभी मैं आपको कुछ बातों के लिये मना करती हूँ। आपको उसका बुरा नहीं मानना चाहिये। 'म' शक्ति के सिद्धान्त अनुसार आपको निराश नहीं होना चाहिये, क्योंकि आपका मार्गदर्शन करना मेरा कर्तव्य है। कुछ लोग निराश हो जाते हैं। आप ध्यान रखें आपको सिद्ध बनना है। दूसरे स्वीकार करें आप सिद्ध हैं। ज्योंही वे आपको देखें उन्हें स्पष्ट हो आप सिद्ध हैं। आप इसके लिये यत्न करें। यदि यह होता है तो सब शुभ होगा।

एक दिन मैंने आपसे कहा था कि आप अपने सब मित्र और सम्बन्धियों को मध्यान्ह अथवा रात्रि भोज के लिये पूजा या किसी अन्य कार्यक्रम के लिये आमन्त्रित करें। साथ ही कुछ सहजयोगियों को भी आमन्त्रित करें और अपने सब अतिथियों को आत्मसाक्षात्कार प्रदान करें। यदि एक साल तक आप ऐसा करें तो बड़ा लाभकारी होगा।

सबको अनेक आशीर्वाद।

NEW RELEASES

ऑडिओ-विडिओ

Date	Title	Place	Lang.	Type	DVD	VCD	ACD	ACS
19th Jan.1979	आपण धर्म ओळखला पाहिजे	Kalwa	M	Sp			600*	
16th Jan.1979	हमारा क्या कार्य है	Boriwali	H/M	Sp			601*	
21st Mar.1979	जन्मदिवस समारोह - आपके हृदय के अन्दर आत्मा का स्थान हो	Mumbai	H	Sp			265	265
22nd Sep.1979	Navaratri Celebration : कुंडलिनी आणि श्री गणेश	Dadar	M	Sp			602*	
26th Sep.1979	गुरु तत्व और श्रीकृष्ण शक्ति	Mumbai	H	Sp			293	293
30th Jan.1980	Seminar For New Sahajyogis: सम्वेदना	Mumbai	H	Sp			603*	
3rd Feb.1982	विशेष गोष्टीसाठी ही वेळ आलेली आहे	Rahuri	M	Sp			604*	
8th Mar.1984	सहजयोग आणि कुण्डलिनीची जागृति	Phaltan	M	Pp	392*			
12th Mar.1989	सत्य आत्मा के प्रकाश में ही जाना जा सकता है	Noida	H	Pp	393*		408	408
14th Mar.1989	परमात्मा को याद करने से ही काम हो जाते हैं	Noida	H	Pp	104		605*	
1st Jan.2003	Inauguration of Vaitarna Academy	Vaitarna	E/H/M	Gen.	394			

✦ प्रकाशक ✦
निर्मल ट्रैन्सफोर्मेशन प्रा. लि.
प्लॉट नं.८, चंद्रगुप्त हाउसिंग सोसाइटी, पौड रोड, कोथरुड, पुणे - ४११ ०३८. फोन : ०२०- २५२८६५३७, २५२८६०३२, e-mail : sale@nitl.co.in

एक ही चीज़ मुझे खुशी दे सकती है
और वह है जैसा प्यार मैंने आपसे किया है,
वही प्यार आप एक दूसरे से करें।

प.पू.श्रीमाताजी